लॉर्ड कृष्णा टेक्सटाइल मिल्स

बनाम

इसके कर्मचारी

(पी. बी. गजेंद्रगडकर और के. एन. बेंचु, न्यायाधिपति)

औधोगिक विवाद-कर्मकारों की बर्खास्तगी-दुर्व्यवहार लंबित विवाद से संबंधित नहीं-अनुमोदन के लिए आवेदन-न्यायाधिकरण का क्षेत्राधिकार-यूपी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का यूपी 28) धारा 6ई-औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का 14), धारा 33.

अपीलकर्ता के दो अधिकारियों पर कर्मकारों द्वारा हमला किया गया। इस संबंध में अपीलकर्ता ने आठ कर्मकारों को नोटिस दिया उन्हें अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया तथा कारण बताओ नोटिस जारी किया गया कि उन्हें बर्खास्त क्यों नहीं किया जाना चाहिए। कर्मकारों ने स्पष्टीकरण देते हुए आरोपों से इनकार किया। इसके बाद स्थायी आदेशों के अनुसार उचित जांच की गई, जिसके परिणामस्वरूप उनके विरुद्ध आरोप सिद्ध पाए गये और अपीलकर्ता ने कर्मकारों को बर्खास्त कर दिया और उन्हें सूचना पत्र के एवज में एक महीने के वेतन के साथ अपना अंतिम बकाया लेने को कहा। बोनस को लेकर औद्योगिक न्यायाधिकरण के समक्ष एक विवाद लंबित था, अपीलकर्ता ने धारा 6ई (2)

यूपी इंडस्ट्रियल विवाद अधिनियम, 1947 के तहत कर्मकार की बर्खास्तगी की अनुमोदन के लिए प्रार्थना पत्र पेश किया। न्यायाधिकरण ने इसकी अनुमोदन देने से इनकार कर दिया और अपीलार्थी को निलंबन की तारीख से कर्मकार को पुनः बहाल करने का निर्देश दिया और इस अवधि के बेरोजगारी के लिए पूर्ण वेतन का भुगतान करने का आदेश दिया। अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि न्यायाधिकरण ने अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य किया तथा अपीलकर्ता के निर्णय पर अपीलीय न्यायालय की शक्तियां ग्रहण कर ली।

अभिनिर्धारित किया, अपीलीय न्यायालय के शक्तियों को ग्रहण करके न्यायाधिकरण ने ऐसा क्षेत्राधिकार ग्रहण कर लिया है, जो उसमें निहित नहीं था और अनुमोदन देने से इनकार करना कानूनन स्पष्ट रूप से गलत था। यूपी अधिनियम की धारा 6ई (2)(बी) (या केंद्रीय अधिनियम की धारा 33(2)) के तहत कदाचार के लिए बर्खास्तगी या सेवामुक्ति के लिए पूर्व अनुमोदन लेना जिसका संबंध लंबित विवाद से नहीं है, उ. प्र अधिनियम 6 ई (1)(या केंद्रीय अधिनियम की धारा 33 (1)) में कदाचार के लिए लम्बित विवाद के संबंध में पूर्व अनुमति से अलग है। धारा 6ई (2) के तहत लगाया गया प्रतिबंध उतना कठोर एवं सख्त नहीं है, जितना की 6ई (1) में है। अनुमति देने अथवा रोकने का क्षेत्राधिकार प्रथम दृष्टया दूसरी 3 एस.सी. आर. सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्टस् 205 स्थिति में दिये जाने वाले

अनुमोदन से ज्यादा व्यापक है। जहां नियोक्ता ने उचित घरेलू जांच की और जांच के नतीजे के तौर पर कर्मकार को बर्खास्त कर दिया था ऐसी स्थिति में न्यायाधिकरण बस इतना ही जॉच कर सकता था कि (i) क्या स्थायी आदेश बर्खास्तगी को उचित ठहराते हैं, (ii) क्या जांच स्थायी आदेश के अनुसार की गई थी, (iii) क्या एक महीने का वेतन का भुगतान किया गया था और (iv) क्या अनुमोदन के लिए आवेदन निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार किया गया था। वर्तमान मामले में ये सभी शर्तों की पालना की गई थी, लेकिन न्यायाधिकरण ने अपनी सीमाओं को नज़रअंदाज किया और एक अपीलीय न्यायालय, जिसको तथ्य के प्रश्न में जाने का अधिकार है, की शक्तियां ग्रहण कर ली।

पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम इसके कर्मकार, [1960] । एससीआर 806, संदर्भित।

प्रश्न: क्या अनुमोदन के लिए आवेदन यूपी अधिनियम की धारा 6ई (2) (बी) या सेंट्रल एक्ट की धारा 33(2) (बी) धारा के तहत_बर्खास्तगी के आदेश के बाद भी किया जा सकता है अथवा इसे बर्खास्तगी के आदेश पारित करने से पहले किया जाना आवश्यक है

नोट:- उ.प्र. औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 6ई केंद्रीय औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 33 के समान है।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 427/1959

विशेष अनुमति याचिका औद्योगिक न्यायाधिकरण इलाहाबाद, यूपी (कपड़ा) की याचिका (धारा 6.ई के तहत) संख्या (टेक्स)1957 का 3 और 4 और 1958 का 1 में 18 फरवरी 1958 के फैसले से उत्पन्न.). भारत के अटॉर्नी-जनरल एमसी सीतलवाड और अपीलकर्ता की ओर से जीसी माथुर।

बी.पी. माहेश्वरी, उत्तरदाताओं के लिए।

1960. 12 दिसंबर। न्यायालय का फैसला दिया गया

गजेंद्रगडकर, जे. -- अपीलकर्ता लॉर्ड कृष्णा टेक्सटाइल मिल्स द्वारा अपने 8 कर्मकारों की बर्खास्तगी की अनुमोदन प्राप्त करने के लिए धारा 6ई (2) (बी) संयुक्त प्रांत औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (1947 का अधिनियम XXVIII) के तहत तीन आवेदन औद्योगिक न्यायाधिकरण में प्रस्तुत किये थे न्यायाधिकरण ने अपीलकर्ता द्वारा की गई कार्रवाई को अपना अनुमोदन देने से इनकार कर दिया। इस विशेष अनुमति याचिका द्वारा अपील उक्त आदेश की वैधता, वैधता के साथ-साथ औचित्य को चुनौती देने के लिए की गई है, और मुख्य प्रश्न जो यह उठाना चाहता है वह धारा 6-ई (2) (बी) के तहत अनुमत जांच के दायरे और साथ ही ऐसी जांच करने में न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र की सीमा के संबंध में है। धारा 6-ई(2) यूपी अधिनियम औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947(1947 का XIV), (इसके बाद इसे अधिनियम

कहा जाएगा और सुविधा के लिए हम बाद वाले खंड मे यही उल्लेख करेंगे) की धारा 33 के समान है, क्योंकि वर्तमान अपील में हम जो निर्णय लेंगे वह यूपी एक्ट की धारा 6-ई (2) (बी) एवं धारा 33(2) (बी) अधिनियम के अंतर्गत आने वाले मामलों पर उतना ही लागू होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि 12 अक्टूबर, 1957 को जब अपीलकर्ता के उत्पादन नियंत्रक और सामान्य अधीक्षक अपीलकर्ता के मिलों के कार्यालय में कुछ मामलों पर चर्चा कर रहे थे, तो अपीलकर्ता द्वारा बर्खास्त किए गए 8 कर्मकारों में से एक हर प्रसाद, कुछ अन्य कर्मकार के साथ नियंत्रक से मिलने आए। इन कर्मकार ने नियंत्रक के समक्ष अपनी कुछ शिकायतें रखीं; और जब नियंत्रक ने उनके नेता हर प्रसाद से कहा कि उनके द्वारा दी गई शिकायतें उचित नहीं हैं तो हर प्रसाद ने उत्तर दिया कि नियंत्रक अपीलकर्ता मिलों के प्रबंधन का प्रभारी है और वह जो चाहे कर सकता है, लेकिन उन्होंने कहा कि प्रबंधन ने जो तरीके अपनाए हैं उचित नहीं है और "यह बहुत असंतोषजनक परिणाम ला सकता है"। इन शब्दों के साथ हर प्रसाद और उनके साथी कंट्रोलर के कार्यालय से चले गये। इसके दो दिन बाद हर प्रसाद और मूल चंद नियंत्रक से उनके कार्यालय में फिर से मिलने आये और शिकायत की कि बैक साइज़र्स में से एक यामीन ने उन्हें बताया था कि नियंत्रक ने उसे पीटा था; नियंत्रक ने इस आरोप से इनकार किया जिसके बाद दोनों कर्मकार उनके कार्यालय से चले गए। उसी शाम लगभग

6 बजे अपीलकर्ता मिलों के कई कर्मकारों ने श्री कान्ट्रेक्टर, सामान्य अधीक्षक और श्री सुरती को उस समय घेर लिया जब वे मिलों से अपने बंगले लौट रहे थे और उन पर हमला किया और उन्हें पीटा। दोनों अधिकारियों ने रात करीब 9 बजे थाना सदर बाजार, सहारनपुर में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। इसके बाद पुलिस निरीक्षक अपराध स्थल पर गए, और स्थानीय पूछताछ करने पर दो कर्मकारों रमेश चंद्र कौशिक और टीका राम को गिरफ्तार कर लिया। इस अपराध के कारण स्वाभाविक रूप से मिलों में गंभीर अव्यवस्था फैल गई और मिल के अधिकारियों में भारी नाराजगी हुई जिसके परिणामस्वरूप मिलें तीन दिनों तक बंद रहीं। इसके बाद अपीलकर्ता प्रबंधन ने अपनी जांच शुरू की और 17 अक्टूबर को पांच कर्मकारों हर प्रसाद, माजिद, जिंदा, यामीन और मानक चंद को निलंबित कर दिया। इनमें से प्रत्येक निलंबित कर्मकार को नोटिस दिया गया और उनसे अपने आचरण के बारे में स्पष्टीकरण देने को कहते हुए, कारण बताने को कहा गया कि क्यों न उन्हें मिलों की सेवा से बर्खास्त कर दिया जाए। आगे की जांच के परिणामस्वरूप प्रबंधन ने 24 अक्टूबर को दो और कर्मकारों ओम प्रकाश और सतनाम को निलंबित कर दिया और उन्हें इसी तरह के नोटिस दिए गये। तब रमेश चंद्र कौशिक और टीका राम पुलिस हिरासत में थे। पुलिस हिरासत से रिहा होने के बाद 24 नवंबर को उन्हें नोटिस भेजकर पूछा गया कि क्यों न उनकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएं।

जिन-जिन कर्मकारों को नोटिस भेजा गया था, उन्होंने अपना स्पष्टीकरण दिया और अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार किया। फिर स्थायी आदेशों के अनुसार एक जांच की गई। उक्त जांच पर सभी संबंधित कर्मकारों के साथ-साथ यूनियन के प्रतिनिधियों को उपस्थित होने की अनुमति दी गई और दोषी कर्मकारों को अपने गवाह पेश करने के साथ-साथ प्रबंधन द्वारा उनके खिलाफ पेश किए गए गवाहों से जिरह करने का पूरा मौका दिया गया। इस प्रकार हुई जांच के परिणामस्वरूप प्रबंधन ने पाया कि संबंधित कर्मकारों के खिलाफ आरोप साबित है और 19 नवंबर को ओम प्रकाश, सतनाम, माजिद, यामीन, जिंदा और हर प्रसाद को बर्खास्त कर दिया गया। इन बर्खास्त कर्मकारों को स्थायी आदेशों के अनुसार नोटिस के बदले एक महीने के वेतन के साथ अपना अंतिम बकाया लेने के लिए कहा गया । 20 दिसंबर को, टीका राम और रमेश चंदर के खिलाफ आयोजित जांच समाप्त हो गई और निष्कर्षों के परिणामस्वरूप उनके खिलाफ आरोप साबित हो गए और उक्त दो कर्मकारों को भी सेवा से बर्खास्त कर दिया गया और उन्हें नोटिस के बदले एक महीने के वेतन के साथ अपना अंतिम बकाया लेने को कहा गया।

इसी समय संबंधित वर्ष के लिए बोनस के संबंध में एक औद्योगिक विवाद औद्योगिक न्यायाधिकरण (कपड़ा) यूपी, इलाहाबाद के समक्ष लंबित था। इसलिए, अपीलकर्ता ने यूपी अधिनियम की धारा 6-ई(2)

3 एस.सी. आर. सर्वोच्च न्यायालय रिपोर्टस् के अन्तर्गत न्यायाधिकरण के समक्ष तीन आवेदन क्रमशः 21 और 27 नवंबर और 21 दिसंबर, 1957 को प्रस्तुत किया। इन आवेदनों के माध्यम से अपीलकर्ता ने प्रार्थना की कि औद्योगिक न्यायाधिकरण को संबंधित कर्मकारों की बर्खास्तगी को अपना अनुमोदन देना चाहिए। 18 फरवरी, 1958 को न्यायाधिकरण ने पाया कि अपीलकर्ता संबंधित कर्मकारों को बर्खास्त करने का मामला बनाने में विफल रहा है, और इसलिए उसने उनकी बर्खास्तगी को अपना अनुमोदन देने से इनकार कर दिया। तदनुसार इसने अपीलकर्ता को निर्देश दिया कि वह उक्त कर्मकारों को उनकी मूल नौकरी पर सेवा की निरंतरता में उसी तारीख से बहाल करे जिस दिन उन्हें निलंबित किया गया था, और यह आदेश दिया कि अपीलकर्ता को बेरोजगारी की अवधि के लिए उन्हें पूरा वेतन देना चाहिए। इन तथ्यों पर ही यूपी एक्ट की धारा 6-ई (2) (बी) के निर्वचन का प्रश्न उठता है।

जैसा कि हमने पहले देखा है कि यूपी अधिनियम की धारा 6-ई अधिनियम की धारा 33, 36 वर्ष 1956 के संशोधन के उपरांत, समान हैं, और चूंकि वाद की धारा सामान्य अनुप्रयोग की है इसलिए हम इस धारा 33 के सुसगंत प्रावधानों को पढ़ने का प्रस्ताव करते हैं तथा विवेचन करते है। इस धारा के बारे में हम जो कुछ भी कहते हैं वह स्वचालित रूप से यूपी एक्ट की धारा 6-ई के संबंधित प्रावधानों पर लागू होता है।

धारा 33 अधिनियम के अध्याय VII में आती है जिसमें विविध प्रावधान शामिल हैं। धारा 33 का उद्देश्य स्पष्ट रूप से अधिनियम द्वारा निर्धारित किसी भी प्राधिकारी के समक्ष लंबित औद्योगिक कार्यवाही को किसी भी अन्य औद्योगिक विवाद से प्रभावित हुए बिना शांतिपूर्ण माहौल में जारी रखने की अनुमति देना है; इसीलिए इस धारा का स्पष्ट उद्देश्य उक्त कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान जहां तक संभव हो यथास्थिति बनाए रखना है। 1956 के अधिनियम 36 द्वारा संशोधन से पहले धारा 33 आम तौर पर उन सभी मामलों पर लागू होता है जहां नियोक्ता द्वारा सेवा की शर्तों में बदलाव करने का इरादा था, या किसी कर्मकार के खिलाफ सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का आदेश पारित करने का प्रस्ताव किया गया था, बिना यह भेद किए कि क्या उक्त परिवर्तन या उक्त सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का आदेश किसी भी तरह से औद्योगिक प्राधिकरण के समक्ष लंबित विवाद से जुड़ा था। दूसरे शब्दों में असंशोधित धारा का प्रभाव यह था कि किसी औद्योगिक विवाद के लंबित रहने तक नियोक्ता कर्मकारों की सेवा की शर्तों में पक्षपात करते हुए कोई बदलाव नहीं कर सकता था और प्रस्तावित होने के बावजूद अपने किसी भी कर्मकार के खिलाफ सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का कोई आदेश पारित नहीं कर सकता था। बावजुद इसके परिवर्तन या इच्छित कार्रवाई उसके और उसके कर्मकारों के बीच लंबित विवाद से कोई संबंध रखता हो या नहीं। इसके कारण नियोक्ताओं द्वारा एक सामान्य शिकायत की गई कि उन मामलों के संबंध में निर्दिष्ट

अधिकारियों की अनुमति प्राप्त करने के लिए कई आवेदन करने पड़ते थे जो निर्णय के लंबित औद्योगिक विवाद से जुड़े नहीं थे; और कई मामलों में जहां सेवा की शर्तों में बदलाव की तत्काल आवश्यकता थी या अनुशासन के हित में दोषी कर्मकार के खिलाफ तत्काल कार्रवाई आवश्यक थी नियोक्ता आवश्यक कार्य करने में असमर्थ थे और उन्हें न्यायाधिकरण की सहमति और अनुमति प्राप्त करने की प्रक्रिया में देरी होती थी। इसीलिए, धारा 33 में 1956 में संशोधन किए गए जिसके द्वारा विधायिका ने एक तरफ विवाद से जुड़े किसी भी मामले के संबंध में नियोक्ता द्वारा की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई और दूसरी तरफ लंबित विवाद से जुड़े किसी मामले के संबंध में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के बीच एक व्यापक विभाजन किया है।

धारा 33(1) में प्रावधान है कि ऐसी औद्योगिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान कोई भी नियोक्ता (ए) विवाद से जुड़े किसी भी मामले के संबंध में, ऐसे विवाद से कर्मकारों के प्रतिकुल ऐसी कार्यवाही शुरू होने से ठीक पहले उन पर लागू सेवा की शर्तों में बदलाव नहीं करेगा। , या (बी) विवाद से जुड़े किसी भी कदाचार के लिए, ऐसे विवाद से जुड़े किसी भी कर्मकार को सिवाय उस प्राधिकारी की लिखित अनुमति के बिना जिसके समक्ष कार्यवाही लंबित है बर्खास्तगी या दंडित किया जा सकता है। इस प्रकार मूल असंशोधित धारा अब उन मामलों तक ही सीमित कर दी गई है

जहां नियोक्ता की ओर से प्रस्तावित कार्रवाई किसी औद्योगिक प्राधिकरण के समक्ष लंबित विवाद से जुड़े मामले के संबंध में है। अन्तर्गत धारा 33(1) के तहत यदि कोई नियोक्ता किसी लंबित विवाद से जुड़े मामले के संबंध में सेवा की शर्तों में बदलाव करना चाहता है तो वह ऐसा केवल उचित प्राधिकारी की लिखित अनुमति के साथ ही कर सकता है। इसी प्रकार, यदि वह लंबित विवाद से जुड़े कथित कदाचार के आधार पर किसी कर्मकार के खिलाफ कोई कार्रवाई करना चाहता है तो वह ऐसा तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उसे उपयुक्त प्राधिकारी की लिखित अनुमति न मिल जाए।

इस न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर किसी औद्योगिक विवाद के निर्णय के लंबित रहने तक नियोक्ता के कार्रवाई करने के अधिकार पर प्रतिबंध लगाने के उद्देश्य पर विचार किया गया है। पंजाब नेशनल बैंक लिमिटेड बनाम इट्स वर्कर्स ([1]) के मामले में इस न्यायालय ने इस बिंदु पर अपने पहले के निर्णयों की जांच की और उस प्राधिकारी द्वारा ऐसी जांच में जब धारा 33(1) के तहत आवेदन किया जाता है तो जांच की प्रकृति व उसके क्षेत्राधिकार की सीमा पर विचार किया। " धारा 33 को अधिनियमित करने में विधायिका का जो उद्देश्य था", यह माना गया, "निणर्य लंबित रहने तक नियोक्ता द्वारा किसी भी कार्रवाई पर प्रतिबंध लगाकर यथास्थिति बनाए रखना था", और कहा गया "लेकिन धारा

33 द्वारा औद्योगिक न्यायाधिकरण को प्रदत्त क्षेत्राधिकार सीमित है। जहां एक उचित जांच की गई हो और कोई उत्पीड़न या अनुचित श्रम अभ्यास का सहारा नहीं लिया गया हो, न्यायाधिकरण ने अनुमति देने में केवल खुद को संतुष्ट करना चाहिए कि कर्मकार के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला है और प्रस्तावित कार्रवाई की औचित्य या पर्याप्तता पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।" यह महत्वपूर्ण है कि न्यायाधिकरण कोई शर्त नहीं लगा सकता है और उसे या तो अनुमति देनी होगी या इसे अस्वीकार करना होगा। यह भी महत्वपूर्ण है कि जब अनुमति दी गई तो उसका प्रभाव केवल धारा 33 द्वारा लगाए गए प्रतिबंध को हटाना था। ना यह बर्खास्तगी को आवश्यक रूप से मान्य करने के लिए है या उक्त बर्खास्तगी को किसी औद्योगिक विवाद में चुनौती दिए जाने से नहीं रोकता है। यह स्थिति हमारे समक्ष विवादित नहीं है। हमारे सामने जो विवाद है वह जांच की प्रकृति और धारा 33(2) के तहत ऐसी जांच करने में प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र की सीमा है।

धारा 33(2) सेवा की शर्तों में बदलाव के साथ-साथ किसी भी लंबित विवाद में संबंधित कर्मकारों की सेवामुक्ति या बर्खास्तगी के किसी ऐसे मामले के संबंध में है, जहां ऐसा परिवर्तन या ऐसा सेवामुक्ती या बर्खास्तगी उक्त लंबित विवाद से जुड़ा नहीं है। मामलों का यह वर्ग जहां प्रस्तावित कार्रवाई को जन्म देने वाला मामला लंबित औद्योगिक विवाद से

असंबंधित है, धारा 33(1) के दायरे से बाहर कर दिया गया है और धारा 33(2) द्वारा अलग से प्रावधान किया गया है।

धारा 33(2) इस प्रकार है :

"किसी औद्योगिक विवाद के संबंध में ऐसी किसी कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, नियोक्ता, ऐसे विवाद में संबंधित कर्मकार पर लागू स्थायी आदेशों के अनुसार, -

(ए) विवाद से नही जुड़े किसी भी मामले के संबंध में, ऐसी कार्यवाही शुरू होने से ठीक पहले उस कर्मकार पर लागू सेवा की शर्तों में बदलाव कर सकता है; या

(बी) विवाद से नही जुडे किसी भी कदाचार के लिए, उस कर्मकार को सेवामुक्त या दंड, चाहे बर्खास्तगी से या अन्यथा कर सकता है:

बशर्ते कि ऐसे किसी भी कर्मकार को तब तक सेवामुक्ति या बर्खास्त नहीं किया जाएगा, जब तक कि उसे एक महीने के लिए मजदूरी का भुगतान नहीं किया गया हो और उसके लिए नियोक्ता द्वारा जिसके समक्ष की गई कार्रवाई के अनुमोदन के लिए कार्यवाही लंबित है उस प्राधिकारी को आवेदन नहीं दिया गया हो। "

यह देखा गया है कि सम्बद्घ स्थायी आदेशों के अनुसार किसी औद्योगिक विवाद के लंबित रहने के दौरान भी नियोक्ता को अब सेवा की

शर्तों में बदलाव करने के अधिकार को मान्यता दी गई है, जब तक कि यह लंबित विवाद से जुड़े मामले से संबंधित न हो, और प्रासंगिक स्थायी आदेशों के अनुसार इस अधिकार का उसके द्वारा प्रयोग किया जा सकता है। ऐसे परिवर्तन के संबंध में कोई आवेदन करने की आवश्यकता नहीं है और न ही कोई अनुमोदन प्राप्त करने की आवश्यकता है। हालाँकि, जब कोई नियोक्ता विवाद से नही जुड़े कथित कदाचार के लिए किसी कर्मकार को बर्खास्त या बर्खास्त करना चाहता है, तो वह स्थायी आदेशों के अनुसार ऐसा कर सकता है, लेकिन परंतुक द्वारा इस शक्ति के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। परंतुक की आवश्यकता है कि ऐसे किसी भी कर्मकार को तब तक सेवामुक्ति या बर्खास्त नहीं किया जाएगा जब तक कि दो शर्तें पूरी न हो जाएं; पहला यह कि संबंधित कर्मकार को एक महीने का वेतन दिया जाना चाहिए, और दूसरा यह कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई की अनुमोदन के लिए नियोक्ता द्वारा उपयुक्त प्राधिकारी को आवेदन किया जाना चाहिए। यह स्पष्ट है कि जबकि धारा 33(1) के अंतर्गत नियोक्ता द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती जब तक कि उसने पहले लिखित रूप में उपयुक्त प्राधिकारी की स्पष्ट अनुमति प्राप्त नहीं कर ली हो। जबकि उप-धाराओं (2) के अंतर्गत आने वाले मामलों में कोई भी कार्रवाई करने से पहले नियोक्ता को निर्दिष्ट शर्तों को पूरा करना आवश्यक है लेकिन उसे लिखित रूप में पूर्व सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। यह आवश्यकता कि उसे अनुमोदन प्राप्त करना चाहिए इस आवश्यकता

से अलग है कि उसे पहले अनुमति प्राप्त करनी होगी, यह दर्शाता है कि धारा 33(2) द्वारा लगाया गया प्रतिबंध उतना सख्त या कठोर नहीं है जितना धारा 33(1) द्वारा लगाया गया है। अनुमति देने या रोकने का प्रथम दृष्टया क्षेत्राधिकार अनुमोदन देने से अधिक व्यापक है। धारा 33(2) के अंतर्गत आने वाले मामलों में औद्योगिक प्राधिकरण यह जांच करने का हकदार होगा कि क्या प्रस्तावित कार्रवाई स्थायी आदेशों के अनुसार है, क्या संबंधित कर्मकार को एक महीने के लिए वेतन का भुगतान किया गया है, और क्या उक्त कृत्य के अनुमोदन के लिए उपधारा के तहत आवेदन किया गया है। धारा 33(2) (ए) के अंतर्गत आने वाली सेवा शर्तों में परिवर्तन के मामलों में ऐसी किसी अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है और नियोक्ता का अधिकार किसी भी प्रतिबंध से अप्रभावित रहता है। इसलिए, नकारात्मक शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि इस धारा के तहत जांच करने के लिए उपयुक्त औद्योगिक प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र धारा 33(2) (बी) से व्यापक नहीं हो सकता और यदि है भी तो, धारा 33(1) के अंतर्गत अनुमत सीमा से अधिक सीमित है, और धारा 33(2) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में उपयुक्त प्राधिकारी को दो उप-धाराओं के अंतर्गत आने वाले मामलों के दो वर्गों को अलग करने और एक मामले में स्पष्ट अनुमति और दूसरे में केवल अनुमोदन प्रदान करने में विधानमंडल द्वारा जानबूझकर किए गए विचलन को ध्यान में रखना चाहिए। यह सत्य है कि किसी उचित मामले में प्राधिकारी को अनुमोदन देने से इंकार कर सकती है

क्योंकि धारा 33(5) स्पष्ट रूप से प्राधिकरण को धारा 33 (2) (बी) के प्रावधान के तहत उसके समक्ष किए गए आवेदन के संबंध में ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार देता है। जैसा वह उचित समझे; यह या तो अनुमोदन दे सकता है या अनुमोदन देने से इंकार कर सकता है; यद्यपि, यह कोई शर्त नहीं लगा सकता है और कोई सशर्त आदेश पारित नहीं कर सकता है।

धारा 33(3) संरक्षित कर्मकारों के मामलों से संबंधित है और यह सेवा की शर्तों में बदलाव या उनके संबंध में किए जाने वाले या पारित किए जाने वाले प्रस्तावित सेवामुक्ति या बर्खास्तगी के आदेशों के मामलों को धारा 33(1) के अंतर्गत आने वाले मामले में समाहित करती है। दूसरे शब्दों में, जहां कोई नियोक्ता किसी संरक्षित कर्मकार के संबंध में सेवा की शर्तों में बदलाव करना चाहता है, या उसके खिलाफ सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का आदेश पारित करना चाहता है, तो ऐसी कार्रवाई करने के उसके अधिकारों पर उसी तरीके से प्रतिबंध लगाया जाता है जैसे कि धारा 33(1) के तहत लगाया गया है। उप-धारा (4) संरक्षित कर्मकारों की मान्यता प्रदान करती है, और उनकी संख्या को उसमें बताए अनुसार सीमित करती है; और उप-धारा(5) के लिए आवश्यक है कि जहां एक नियोक्ता ने उप-धाराओं (2) के परन्तुक के अनुसार एक आवेदन किया हो,

संबंधित प्राधिकारी ऐसे आवेदन पर बिना देरी किए सुनवाई करेगा और उसके संबंध में यथाशीघ्र ऐसे आदेश पारित करेगा जो वह उचित समझे। यह प्रावधान विधायी मंशा को सामने लाता है, कि हालांकि धारा 33(2) (बी) के प्रावधानों के तहत आने वाले मामलों में लिखित रूप में स्पष्ट अनुमति की आवश्यकता नहीं है, यह वांछनीय है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई और उक्त परन्तुक के तहत जांच में उचित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के बीच कोई समय अंतराल नहीं होना चाहिए।

इससे पहले कि हम विवाद के गुण-अवगुण पर विचार करें, हालाँकि, हम संजोगवश निर्वचन की एक अन्य समस्या का उल्लेख कर सकते हैं जो धारा 33(2) (बी) के तहत लिए गए निर्णय से उत्पन्न होता है और जिस पर हमारे सामने कुछ विस्तार से बहस की गई है। नियोक्ता को धारा 33(2) (बी) के परंतुक के अंतर्गत आवेदन कब करना आवश्यक है? इस बिंदु पर दो मत संभव हैं। ऐसा हो सकता है कि यह परन्तुक किसी विवाद के लंबित रहने तक अपने कर्मकार को बर्खास्त करने या सेवामुक्त करने के नियोक्ता के मान्यता प्राप्त अधिकार के प्रयोग के लिए दो पूर्ववर्ती शर्तें लगाता है। "जब तक ना" शब्द का उपयोग इस तर्क के समर्थन में

किया जा सकता है कि दोनों स्थितियाँ पूर्ववर्ती स्थितियाँ हैं; उसे कर्मकार को एक महीने का वेतन देना होगा, और उसे अनुमोदन के लिए एक आवेदन करना होगा; और कर्मकार को सेवामुक्ति या बर्खास्त करने से

पहले इन दोनों शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण से, नियोक्ता के लिए यह स्वतंत्रता होगी कि वह प्राधिकारी के समक्ष लम्बित प्रार्थना पत्र पर अंतिम आदेश की प्रतीक्षा किए बिना उक्त दो शर्तों को पूरा करने के बाद अपने कर्मकार को सेवामुक्त कर सकता है या बर्खास्त कर सकता है। विधानमंडल ने संकेत दिया है कि आवेदन करने और उसके अंतिम निपटान के बीच कोई समय अंतराल नहीं होना चाहिए, और इसी प्रकार उप-धारा (5) द्वारा भी इसमें विशेष रूप से और स्पष्ट रूप से प्रावधान किया गया है कि ऐसे आवेदन का यथासंभव शीघ्रता से निपटान किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण इस धारणा पर आगे बढ़ता है कि शब्द "जब तक ना" का वास्तव में अर्थ "जब तक " है और यह एक पूर्व शर्त को बताता है।

दूसरी ओर, यह तर्क देना संभव है कि किसी भी कार्रवाई से पहले आवेदन करने की आवश्यकता नहीं है, और यह इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई के अनुमोदन के लिए आवेदन करना आवश्यक है। इसके शब्दकोश अर्थ के अनुसार "अनुमोदन" से पता चलता है कि जिसे अनुमोदित किया जाना है वह पहले ही हो चुका है; यह जो पहले ही हो चुका है या किया चुका है उसके अनुसमर्थन की प्रकृति जैसा है। शब्द "अनुमोदन" शब्द "पूर्व अनुमति" शब्द के विपरीत दर्शाता है कि कार्रवाई पहले की जाती है और अनुमोदन बाद में प्राप्त किया जाता है।

इसके अलावा, यह तर्क दिया जा सकता है कि हमारे द्वारा रेखांकित किए गए शब्द "कार्रवाई की गई" दर्शाते हैं कि सेवामुक्ति या बर्खास्तगी का आदेश पारित कर दिया गया है, और इस प्रकार की गई कार्रवाई के लिए नियोक्ता द्वारा किए गए आवेदन द्वारा अनुमोदन मांगा गया है। पहले निर्वचन में "कार्रवाई की गई" शब्द का अर्थ प्रस्तावित कार्रवाई के रूप में समझा जाना चाहिए, जबकि बाद के निर्वचन में उक्त शब्दों को उनका अक्षरशः अर्थ दिया गया है, और यह कहा गया है कि सेवामुक्ति या बर्खास्तगी हो गई है और यह कार्रवाई अनुमोदन के प्रार्थना के लिए है। पहले दृष्टिकोण के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि "कार्रवाई की गई" शब्द की व्याख्या "कार्रवाई के लिए प्रस्तावित कार्रवाई" के रूप में की जा सकती है क्योंकि यह स्पष्ट है कि मजदूरी के भुगतान की स्थिति का शाब्दिक अर्थ नहीं लगाया जा सकता है और इसमें ऐसे मामले शामिल होने चाहिए जहां कर्मकार को मजदूरी का भुगतान किया गया हो, लेकिन उसके द्वारा स्वीकार नहीं किया गया हो। दूसरे शब्दों में, पहली व्याख्या के समर्थन में तर्क यह है कि दोनों स्थितियों के निर्वचन में "भुगतान किया गया" और "की गई कार्रवाई" शब्दों का शाब्दिक अर्थ नहीं लगाया जा सकता है, और संदर्भ में अधिक उदार व्याख्या की जानी चाहिए। उस दृष्टिकोण से "भुगतान की गई मजदूरी" का अर्थ "अदा की गई मजदूरी" होगा और "की गई कार्रवाई" का अर्थ "किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई" होगा। यदि इन दो शब्दों का शाब्दिक अर्थ लगाया जाए तो "जब

तक ना" शब्द के उपयोग से शुरू की गई धारणा और इस प्रकार शाब्दिक रूप से समझे गए इन शब्दों के बीच कुछ विसंगति हो सकती है।

पहले तर्क के समर्थन में यह भी कहा जा सकता है कि यदि परंतुक द्वारा लगाए गए प्रतिबंध का मतलब यह नहीं है कि नियोक्ता द्वारा कोई भी कार्रवाई करने से पहले एक आवेदन करना होगा, तो इसे नियोक्ता की इच्छा पर छोड़ दिया जाएगा कि वह किसी भी समय अपेक्षित आवेदन कर सकता है। यह धारा किसी उचित अवधि का प्रावधान नहीं करता है जिसके अन्दर आवेदन किया जाना चाहिए और किसी भी समय के अन्दर ऐसा आवेदन करने में नियोक्ता की ओर से चूक के लिए कोई दंड निर्धारित नहीं करता है। दूसरी ओर, अधिनियम की धारा 33ए के संदर्भ में इस तर्क का जवाब दिया जा सकता है। यदि कोई नियोक्ता उचित समय के अन्दर आवेदन नहीं करता है तो कर्मकार इसे धारा 33 (2)(बी) नियमों का उल्लंघन मान सकता है और धारा 33ए के तहत शिकायत कर सकता है और ऐसी शिकायत पर ऐसे मुकदमा चलाया जाएगा मानो यह कोई औद्योगिक विवाद हो; लेकिन, दूसरी ओर, नियोक्ता आवेदन करके धारा 33(2)(बी) के अनुपालन के लिए तुरंत आगे बढ़कर ऐसी शिकायत को अप्रभावी बनाने का प्रयास कर सकता है और प्राधिकरण को तब इस पर विचार करना होगा कि क्या नियोक्ता द्वारा धारा 33(2)(बी) के तहत आवश्यक आवेदन करने में देरी करना उक्त प्रावधान का उल्लंघन है और

ऐसी जांच विधानमंडल का आशय नहीं हो सकता है, इसीलिए परंतुक के तहत आवेदन करने को एक पूर्ववर्ती शर्त के रूप में माना जाना चाहिए। यदि यह सही स्थिति है तो नियोक्ता को जिस प्रकार उसने कर्मकार को पैसा भुगतान किया है उसी प्रकार सेवामुक्ति या बर्खास्तगी की कार्रवाई करने से पहले उसे आवेदन करना होगा, लेकिन, यदि यह कोई पूर्व शर्त नहीं है, तो वह सेवामुक्ति या बर्खास्तगी के आदेश पारित कर सकता है और उचित समय के भीतर उस संबंध में आवेदन कर सकता है।

हमने परंतुक के निर्वचन के संबंध में प्रतिद्वंद्वी तर्कों को बताया है, लेकिन हम इस बिंदु पर अपना निर्णय व्यक्त नहीं करना चाहते हेैं, क्योंकि, उनके अभिवचन को ध्यान में रखते हुए वर्तमान अपील में, हम उत्तरदाताओं को हमारे निर्णय के लिए यह प्रश्न उठाने की अनुमति नहीं दे सकते हैं। न्यायाधिकरण के समक्ष उठाए गए तर्कों और इस न्यायालय के समक्ष अपने मामले के बयान में उत्तरदाताओं द्वारा विशेष रूप से उठाई गई दलीलों से यह स्पष्ट है कि दोनों पक्ष इस बात पर सहमत थे कि प्रश्नगत आवेदन परन्तुक के तहत उचित रूप से किया गया था; और उनके बीच एकमात्र मुद्दा धारा 33(2)(बी) के तहत जांच के सीमित क्षेत्राधिकार को ध्यान में रखते हुए अपील के तहत आदेश की वैधता और औचित्य के बारे में है और यह, उस प्रश्न पर है जिस पर अब हमें वापस लौटना होगा।

हालाँकि, ऐसा करने से पहले, हमें यह जोड़ना चाहिए कि हमारा ध्यान इस न्यायालय के तीन निर्णयों की ओर आकर्षित किया गया था, जिसमें बिंदु पर कोई चर्चा किए बिना, धारा 33(2)(बी) के तहत नियोक्ताओं के आवेदनों को वैध मान लिया गया था, हालांकि उक्त आवेदन संभवतः नियोक्ताओं द्वारा अपने कर्मकारों को बर्खास्त करने के बाद किए गए थे। वे हैं: दिल्ली क्लॉथ एंड जनरल मिल्स लिमिटेड बनाम कुशल भान ([1]); स्वतंत्र भारत मिल्स, नई दिल्ली का प्रबंधन बनाम रतन लाल ([2]); और द सेंट्रल इंडिया कोल फील्ड्स लिमिटेड, कलकत्ता बनाम राम बिलास शोभनाथ ([3]) हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि इन निर्णयों से यह नहीं समझा जाना चाहिए कि इस बिंदु पर इस तरह से या उस तरह से निर्णय लिया जा चुका है क्योंकि स्पष्ट रूप से न्यायालय के समक्ष इस पर बहस नहीं की गई थी और इस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया था। धारा 33(2)(बी) के तहत अनुमत जांच की सीमित प्रकृति और सीमा को देखते हुए किसी नियोक्ता के आवेदन पर प्राधिकारी केवल यह विचार कर सकता है कि अनुमोदन के लिए प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं। यदि किसी कर्मकार को बर्खास्त करने से पहले नियोक्ता ने उचित घरेलू जांच कर ली है और उक्त जांच के परिणामस्वरूप विवादित आदेश पारित किया है, तो प्राधिकारी केवल यह जांच कर सकता है कि क्या धारा 33(2)(बी) और परंतुक द्वारा निर्धारित शर्तों की पालना की है या नहीं। क्या स्थायी आदेश बर्खास्तगी के आदेश को उचित ठहराते हैं? क्या स्थायी आदेश के

तहत कोई जांच आयोजित की गई है? क्या प्रावधान के अनुसार महीने की मजदूरी का भुगतान कर दिया गया है?; और, क्या प्रावधान के अनुसार आवेदन किया गया है? यह अंतिम प्रश्न वर्तमान अपील में निर्णय लेने योग्य नहीं है क्योंकि यह स्वीकृत है कि आवेदन ठीक तरीके से किया गया है। स्थायी आदेश 21 चूक के ऐसे कृत्यों को निर्दिष्ट करता है जिन्हें कदाचार माना जाता है; और यह स्पष्ट है कि 21(एस) के तहत फैक्ट्री परिसर के भीतर किसी भी संचालक या कर्मकार को धमकाना या डराना कदाचार है जिसके लिए सजा के रूप में बर्खास्तगी निर्धारित है। यह स्थिति भी विवाद में नहीं है, इस बात पर भी कोई विवाद नहीं है कि संबंधित कर्मकारों को उचित आरोप पत्र दिए गए थे, उचित तरीके से जांच की गई थी, और कर्मकारों को अपने साक्ष्य प्रस्तुत करने और उनके खिलाफ पेश किए गए सबूतों की जिरह करने का अवसर दिया गया था; दूसरे शब्दों में, न्यायाधिकरण द्वारा जांच को नियमित और उचित पाया गया है। जांच के परिणामस्वरूप जांच करने वाला अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि संबंधित कर्मकारों के खिलाफ लगाए गए आरोप साबित हो गए हैं, और इसलिए उनके खिलाफ बर्खास्तगी के आदेश पारित किए गए। ऐसे मामलों में यह समझना मुश्किल है कि न्यायाधिकरण को अपीलकर्ता द्वारा की गई कार्रवाई को अनुमोदन देने से इनकार करना कैसे उचित लगा।

अपीलकर्ता द्वारा हमारे समक्ष यह आग्रह किया गया है कि वर्तमान जांच करने में न्यायाधिकरण ने एक ऐसे अपीलीय अदालत की शक्तियां ग्रहण कर ली हैं जो तथ्य के सभी प्रश्नों पर विचार करने में समर्थ है; यह आलोचना हमें पूरी तरह से उचित लगती है। केवल आदेश को पढ़ना से कोई संतुष्ट हो जाएगा कि न्यायाधिकरण ने यह जांच करने के प्रयास में कि क्या जांच में दर्ज तथ्य के निष्कर्ष गुण-दोष के आधार पर उचित थे अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है। इसमें यह नहीं माना गया कि जांच दोषपूर्ण थी या प्राकृतिक न्याय की आवश्यकताएं किसी भी तरह से संतुष्ट नहीं थीं। दूसरी ओर, यह स्पष्ट रूप से तथ्य के प्रश्नों पर विचार किया है और ऐसे कारण बताए हैं जिनमें से कुछ अनुचित और असुसंगत हैं, भले ही शानदार न हों, भले ही न्यायाधिकरण एक अपीलीय अदालत के रूप में प्रासंगिक प्रश्नों पर विचार कर रहा है। "जिस कथानक में बयान दर्ज किए गए हैं," न्यायाधिकरण का कहना है, "वह स्पष्ट और पूरी तरह से समझने योग्य नहीं है।" यह जांच के निष्कर्ष को उलटने का कोई कारण कैसे हो सकता है, समझना असंभव है। न्यायाधिकरण ने यह भी पाया कि पेश किए गए सबूत पर्याप्त नहीं थे और इस पर ठीक से विवेचन नहीं किया गया था। न्यायाधिकरण के अनुसार आरोप-पत्र अधिक विशिष्ट और स्पष्ट होने चाहिए थे और साक्ष्य अधिक संतोषजनक होने चाहिए थे। फिर न्यायाधिकरण ने साक्ष्यों की जांच की, गवाहों द्वारा दिए गए बयानों में कुछ विसंगतियों का हवाला दिया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि घरेलू

जांच में यह निष्कर्ष दर्ज नहीं किया जाना चाहिए कि संबंधित कर्मकारों के खिलाफ आरोप साबित हो गए हैं। हमारी राय में, जांच के निष्कर्षों के खिलाफ ये टिप्पणियां करते समय न्यायाधिकरण ने धारा 33(2)(बी) के तहत जांच करने में अपनी शक्ति और अधिकार पर वैधानिक रूप से लगाई गई सीमाओं को स्पष्ट रूप से नजरअंदाज कर दिया। यह सर्वविदित है कि साक्ष्य की समुचितता या इसकी पर्याप्तता या संतोषजनक प्रकृति के प्रश्न तथ्यों की अदालत में उठाया जा सकता है और अपीलीय अदालत द्वारा विचार किया जा सकता है जो तथ्यों पर विचार करने का समर्थ है; लेकिन ये बिन्दु असुसंगत हैं जहां अदालत का क्षेत्राधिकार धारा 33(2)(बी) के तहत सीमित है। यह कल्पना की जा सकती है कि धारा 33(2)(बी) के तहत जांच करने में भी यदि प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि घरेलू जांच में दर्ज निष्कर्ष इस अर्थ में विकृत है कि यह किसी भी कानूनी साक्ष्य द्वारा उचित नहीं है, तब केवल ऐसे मामले में ही वह इस बात पर विचार करने का समर्थ हो सकता है कि नियोक्ता को अनुमोदन दिया जाना चाहिए या नहीं लेकिन निष्कर्ष जो किसी कानूनी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है और निष्कर्ष जो समुचित या पर्याप्त या सन्तोषजनक साक्ष्य से समर्थित प्रतीत नहीं होता है, के अन्तर को ध्यान में रखना चाहिए। अपील के अधीन दिये अपने फैसले में न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए कारणों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि अपीलकर्ता का यह तर्क पूरी तरह से उचित है कि

न्यायाधिकरण ने कानून द्वारा निहित क्षेत्राधिकार को नहीं माना है, और जिसके परिणामस्वरूप अपीलकर्ता द्वारा की गई कार्रवाई का अनुमोदन देने से इनकार कर दिया है, जो कि कानून की नजर में स्पष्ट रूप से गलत है।

हालाँकि, श्री माहेश्वरी चाहते थे कि हम हर प्रसाद के मामले पर विचार करें, क्योंकि उनके अनुसार, हर प्रसाद को उनकी ट्रेड यूनियन गतिविधियों के लिए नियोक्ता द्वारा परपीड़ित किया गया है। हर प्रसाद कपड़ा मिल मजदूर यूनियन, सहारनपुर के अध्यक्ष हैं और अध्यक्ष के रूप में उनकी गतिविधियों के कारण अपीलकर्ता उन्हें पसंद नहीं करता है। यह स्वीकृत तथ्य है कि प्रासंगिक समय पर हर प्रसाद को संरक्षित कर्मकार के रूप में मान्यता नहीं दी गई थी, और इसलिए उनका मामला धारा 33(3) के अंतर्गत नहीं आता है। न्यायाधिकरण ने पाया है कि इस कर्मकार का नाम किसी भी गवाह द्वारा किसी भी हमले में भाग लेने के रूप में नहीं लिया गया है, और इसलिए उसका मानना है कि उसकी बर्खास्तगी उत्पीड़न के समान है। हमने इस कर्मकार के मामले पर सावधानीपूर्वक विचार किया है, और हम संतुष्ट हैं कि न्यायाधिकरण द्वारा उसकी बर्खास्तगी को भी अनुमोदन देने से इनकार करना उचित नहीं था। यह स्वीकृत तथ्य है कि हर प्रसाद ने 12 अक्टूबर और 14 अक्टूबर दोनों दिन उत्पादन नियंत्रक के समक्ष शिष्टमण्डल का नेतृत्व किया; और पूर्व अवसर पर उसके द्वारा दी गई धमकी से उन्होंने इनकार नहीं किया है। इस प्रकार उन्होंने नियंत्रक से

कहा कि उनके आचरण से परेशानी होगी। यह महत्वपूर्ण है कि 14 अक्टूबर को अधिकारियों पर हमला करने वाले कुछ कर्मकार हर प्रसाद के साथ थे और जब उन्होंने नियंत्रक को धमकी दी तब भी मौजूद थे। सुशील कुमार, जो अपीलकर्ता के उत्पादन नियंत्रक हैं, ने इस धमकी के बारे में गवाही दी है। 14 अक्टूबर को घटित घटनाओं का क्रम स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यह हर प्रसाद द्वारा दी गई धमकी और उसके द्वारा दिए गए उकसावे के कारण 14 अक्टूबर की शाम को हमला हुआ। श्री सुशील कुमार का साक्ष्य सीधा और सच्चा प्रतीत होता है। उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि अतीत में हर प्रसाद उनका सहयोग करते रहे हैं और पिछले किसी भी अवसर पर उन्होंने अधिकारियों पर कोई हमला को नहीं उकसाया। हर प्रसाद ने निस्संदेह इस बात से इनकार किया कि अधिकारियों के साथ उनके साक्षात्कार के दौरान किसी भी तरह के गर्म शब्दों का आदान-प्रदान हुआ था, लेकिन उन्होंने श्री सुशील कुमार के सबूतों पर विवाद नहीं किया है कि उन्होंने उक्त साक्षात्कार के समय चेतावनी दी थी। वास्तव में उनका तर्क यह प्रतीत होता है कि धमकी देने के तुरंत बाद उनके खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए थी। जांच में मिले साक्ष्यों के आधार पर जांच अधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस कर्मकार के खिलाफ लगाया गया उनपर आरोप स्पष्ट रूप से साबित हो गया है। उनपर आरोप था कि उन्होंने जनरल सुपरिंटेंडेंट, वीविंग मास्टर, चीफ इंजीनियर, फैक्ट्री मैनेजर और प्रोडक्शन कंट्रोलर पर हमला करने की साजिश रची थी।

आरोप का विवरण निर्दिष्ट किया गया था, और जांच में यह माना गया कि ये आरोप साबित हो गए थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि ये आरोप साबित हो जाते हैं, तो प्रासंगिक स्थायी आदेशों के तहत बर्खास्तगी की सजा के पात्र हैं। हालाँकि, न्यायाधिकरण ने हर प्रसाद के खिलाफ दर्ज निष्कर्ष की औचित्यता की जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि उक्त निष्कर्ष गुण-दोष के आधार पर उचित नहीं था। जैसा कि हमने पहले ही बताया है कि न्यायाधिकरण के पास जांच के निष्कर्षों पर अपील सुनने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था जैसा कि उसने किया है। परिणामतः सभी कर्मकारों के संबंध में न्यायाधिकरण का निष्कर्ष अनुचित और अधिकार क्षेत्र के बिना है।

तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है, न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया जाता है, और अपीलकर्ता द्वारा धारा 6ई के तहत की गई कार्रवाई को मंजूरी दी जाती है। मुकदमे की लागत हेतु कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

अपील की अनुमति दी गई।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी अखिलेश कुमार (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।